

Professor R.P. Vyas Memorial Lecture Series - VII

(Online Lecture)

Of Culture & Language : A Case Study of United Provinces

by

Professor (Dr.) Himanshu K. Chaturvedi

Department of History

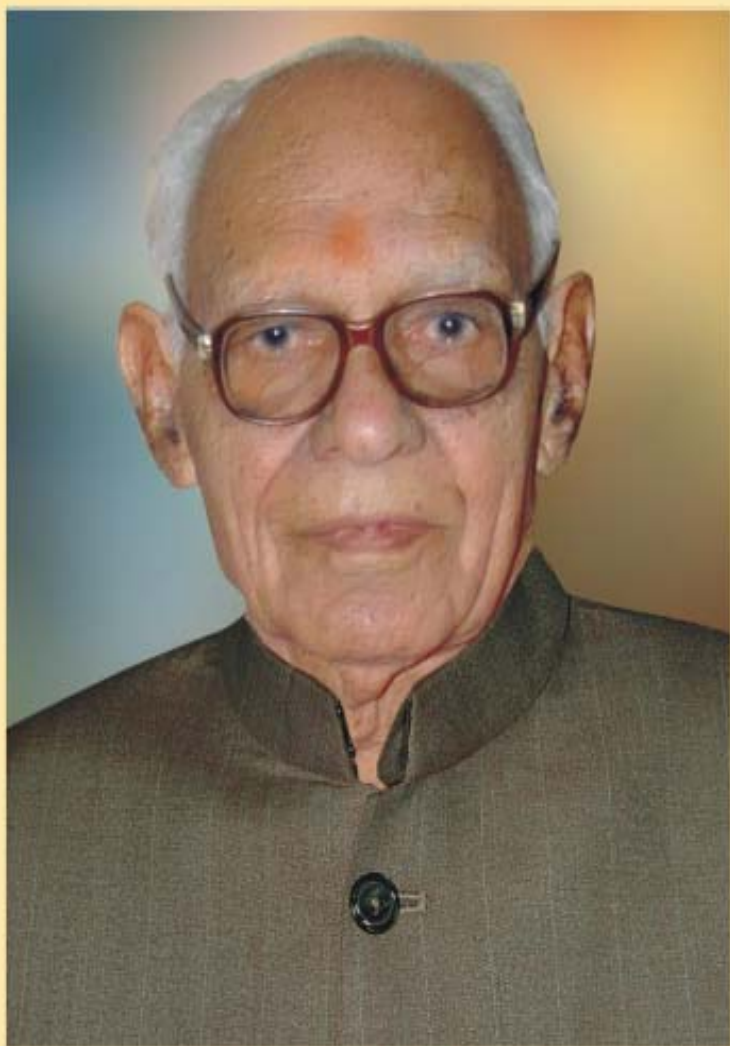
DDU Gorakhpur University, Gorakhpur

July 25, 2020

Prof. R.P. Vyas Smriti Sansthan

Asop ki pole, Jodhpur

www.profrpvyas.org / [email: profrpvyas@gmail.com](mailto:profrpvyas@gmail.com)



Prof. (Dr.) R.P. Vyas

Birth : 12 August, 1922

Demise : 25 July, 2013

Professor R.P. Vyas Memorial Lecture Series - VII

**Of Culture & Language :
A Case Study of United Provinces**

By

Professor (Dr.) Himanshu K. Chaturvedi

Department of History

DDU Gorakhpur University, Gorakhpur

July 25, 2020

Prof. R.P. Vyas Smriti Sansthan

Organizing Committee :

- ☆ Rajendra Prasad Vyas - Chairman
- ☆ En. G.P. Vyas - Vice- Chairman
- ☆ Dr. Manorama Upadhyaya - Secretary
- ☆ Prof. S.P. Vyas
- ☆ Dr. T.V. Vyas - Treasurer
- ☆ Shri Shyam Lal Harsha
- ☆ Shri Suraj Prakash Vyas
- ☆ Shri Nand Kishore Bhootra
- ☆ CA Naveen Kumar Jaisalmeriya
- ☆ Shri Ashok Joshi
- ☆ Smt. Shakuntala Vyas
- ☆ Smt. Kamlesh Vyas
- ☆ Smt. Santosh Vyas
- ☆ Smt. Vijaylaxmi Bhootra
- ☆ Dr. Anil Purohit
- ☆ Dr. Jyotsana Vyas
- ☆ Atul Vyas
- ☆ Shri Arun Joshi
- ☆ Dr. Manisha Vyas
- ☆ Akhil Vyas
- ☆ Smt. Khushboo Purohit

Printed at :

Jangid Computers, Jodhpur 6376545732

Prof. R.P. Vyas : An Introduction

- ❖ Name : Prof. R.P. Vyas
- ❖ Date of Birth : 12th August, 1922
- ❖ Father's Name : Shri Aidass Vyas
- ❖ Mother's Name : Smt. Inder Kaur Vyas
- ❖ Qualification : M.A., Ph.D., LL.B.
- ❖ Career Graph : Started career as a Teacher at Rajput High School, Chopasni, Worked as a Lecturer at S.M.K. College, Jodhpur University, Associate Professor & Head of the History Department, University of Jodhpur (now J.N. Vyas University, Jodhpur) retired on 31st August, 1982.
- ❖ Teaching Experience : 32 years (Graduate & PG level).
- ❖ Research Experience : More than two decades
- ❖ Subject for Ph.D. : "Role of Nobility in Marwar 1800-1873 A.D." Rs. 2000/- were awarded for its publication by the University.
- ❖ Founder Member : (1) Rajasthan History Congress established in 1967.
(2) Shri Jai Narain Vyas Shikshan Sansthan, Jodhpur.
(3) Mahila PG Mahavidyalaya, Jodhpur.

❖ Awards :

1. Durgadas Gold Medal for meritorious service rendered in the field of History and Culture of Rajasthan and Education.
2. Maharana Kumbha award by Maharana Mewar Foundation for best service rendered in the field of history, literature and culture of Rajasthan, 1985.
3. Honoured by Jagdish Singh Gehlot Research Centre for valuable services rendered in the sphere of Education and History.
4. Rajasthan Hindi Granth Academy honour for writing books on history and culture of Rajasthan.
5. Honoured by Sodh Sansthan Shri Dungargarh Churu Rajasthan for research work and honoured by the title 'Itihas Shri'.
6. Jodhpur Royal House (Purva Maharaja Gaj Singhji) conferred 'Palki Siropav' in the year 2000.
7. International Biographical Centre Cambridge CBZ 3GP England nominated him : 'An International Man of the year for 1997-98' - A prestigious award.
8. District Collector Jodhpur honoured him along with a few personalities who did valuable services to the society in the respective fields.
9. Reverend Saint Satya Mitranand ji Giri honoured him for valuable services rendered to the society.
10. Nagrik Abhinandan by the Citizens of Jodhpur on 12-8-98 - Abhinandan Granth 164 pages published on 12th August, 1998. He was honoured by a cash award of Rs. 51000/-.
11. 'Marwar Ratna' for Life Time Achievement by Mehrangarh Museum Trust, Jodhpur, 2011.
12. Bharat Jyoti Award, Indian Friendship Society, New Delhi, 2013.

सेवाधर्मः परमगहनो ।

योगिनाम् अपि अगम्याः ॥ - भर्तृहरि

कर्मयोगी प्रो. आर.पी.व्यास की लोकयात्रा

डॉ. दासनारायण

किसी विशाल वट वृक्ष के नीचे खड़े होकर जब हम विस्मय-विमृग्य हो उसके विस्तृत आयतन की ओर देखते हैं, तब क्या हम सोच भी पाते हैं कि यह विराट वृक्ष कभी एक सरसों के दाने जैसे छोटे से बीज के भीतर छिपा हुआ था? उसी प्रकार 12 अगस्त, 1922 ईसवीं तारीख के दिन, नथावतों की बारी, नवचौकिया मोहल्ले में मारवाड़ राज्य के परम यशस्वी दानवीर राजव्यास, श्री नाथो जी के वंश में श्री आईदस व्यास, श्रीमति इन्दरकौर व्यास के सबसे छोटे (पांचवें) पुत्र के रूप में जो शिशु जन्मा उसे माता-पिता ने अपने इष्ट भगवान श्री राम का प्रसाद मान नामकरण किया 'रामप्रसाद'। उसे देखकर उस समय कौन सोच पाया होगा कि भविष्य में उसके सुदीर्घ जीवनकाल में शनैः शनैः आश्चर्यजनक प्रतिभा का, ऐसी उदार चेता मनीषी का विकास होगा, जिसका प्रभाव देशकाल की मर्यादा के भीतर सीमाबद्ध होकर भी बहुआयामी रहेगा; जो सर्वदा भिन्न भिन्न समय को भिन्न भिन्न परिस्थितियों के परिवेश में भी सतत् विकसित होकर, नर-नारियों के प्राणों में मानवात्मा की शाश्वत महिमा, सत्य-न्याय-मैत्री की सजीव प्रेरणा एवं निर्भय हो लोक कल्याण करने की स्फूर्ति जगाती रहेगी। नामकरण, बीजमंत्र होता है नवोदय शिशु का।

'राम' सम्पूर्ण वेदों का सार है। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों का मूल आधार है। यह मात्र एक नाम नहीं वरन् महामंत्र है। राम प्रत्येक प्राणी के शरीर की जीवन शक्ति है। बाल्यकाल से ही राम शांत स्वभाव के धनी, मधुर एवं मितभाषी, परिवार की धार्मिक-सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुगामी, कुशल खिलाड़ी और कुशाग्र विद्यार्थी के संस्कारों से युक्त थे। कालान्तर में इन्हीं

संस्कार बीजों से अधिकाधिक प्रस्फुटित-पल्लवित होकर, रामप्रसाद नामक प्रियदर्शन तेजस्वी प्रतिभाशाली नवयुवक ने खेलों, अध्ययन-अध्यापन, समाजसेवा, इतिहास लेखन एवं शोध के साथ साथ समाज के कई शिक्षण संस्थानों को पुनः संजीवनी प्रदान कर नया जीवन ही नहीं दिया वरन् उस युग के लोकनायक श्री जयनारायण व्यास-शेरे राजस्थान की नारी शिक्षा के प्रति उत्कण्ठित ललक को साकार मूर्त करने हेतु अपने समकालीन प्रबुद्ध मनीषियों के सहयोग से श्री जयनारायण व्यास शिक्षण संस्थान और महिला महाविद्यालय जैसी शिक्षण संस्थाओं की स्थापना का श्रेयस कार्य कर दिखाया।

बीज के अंकुरण से वृक्ष के पूर्ण विकास की प्रक्रिया भले ही जल्दी-जल्दी होती है, परन्तु इस 'जल्दी' नामक त्वरित समय इकाई में भी कई वर्षों का समय छिपा होता है। इसलिये बीज के पेड़ बनने में और व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास में वर्षों लग जाते हैं। इसलिये श्री, विजय, भूति और नीति ध्रुवा सिद्ध मनीषी प्रो. रामप्रसाद व्यास की लोकयात्रा के 93 वर्षों का लेखा-जोखा युगानुरूप क्रमवार ही दिया जा सकता है, सागर से गागर भरा जा सकता है, गागर में सागर नहीं, क्योंकि वह असीम है।

प्रतिभा सम्पन्न अनुशासित ओलम्पियन खिलाड़ी

प्रतिभा सम्पन्न अनुशासित खिलाड़ी - किसी ओलम्पियन ख्याति अर्जित रामप्रसादजी के पिता श्री आईदासजी व्यास रेलवे विभाग में टी.आई. पद पर रतनगढ़-सुजानगढ़ में कार्यरत थे। इसलिये आपकी हाईस्कूल तक की शिक्षा सुजानगढ़ व रतनगढ़ में हुई। उन दिनों में आप फुटबॉल और वॉलीबाल खेलते और इन खेलों में आपने उन दिनों बीकानेर की राज्यस्तरीय प्रतियोगिताओं में धूम मचा रखी थी। उन दिनों स्कूल के प्रतिभावान छात्र खिलाड़ी के रूप में आपकी ख्याति सर्वाधिक थी। बीकानेर राज्य में अपनी स्कूल का प्रतिनिधित्व करते हुए आपने 'हाई जम्प' में प्रथम स्थान प्राप्त किया था। बीकानेर की राज्यस्तरीय वॉलीबाल टीम के आप कप्तान भी रहे। पढ़ाई के बजाय खेलों में कीर्तिमान स्थापित करने के कारण ही कालान्तर में उच्च अध्ययन हेतु आपको जोधपुर के जसवन्त कॉलेज में प्रवेश प्राप्त हुआ। जसवन्त कॉलेज की वॉलीबाल टीम के लगातार तीन वर्षों तक आप कप्तान रहे। जोधपुर की वॉलीबाल टीम के भी आप खिलाड़ी रहे और कई प्रतियोगिताओं में भागीदारी निभाई। सर्व श्री गोपीनाथजी, जयनारायणजी

जोधावत, श्री चन्दजी थानवी और हबीब तब आपकी टीम में वरिष्ठ सहयोगी खिलाड़ी हुआ करते थे। आपकी वॉलीबाल टीम ने राजस्थान के इन्टर कॉलेज मुकाबलों में कई बार विजयश्री प्राप्त की। आपकी कैप्टनशिप में जोधपुर की वॉलीबाल टीम राजपूताना ओलम्पिक में विजयी रही। सन् 1942 में अखिल भारतीय ओलम्पिक प्रतियोगिता में भाग लेने वाली राजपूताना टीम के आप खिलाड़ी रहे। सन् 1945 में आपको राजपूताना वॉलीबाल टीम का कप्तान बनाया गया। वॉलीबाल खेल में आपने नाना सम्मान, पदक, कलर्स और स्टार्स अर्जित किये। इस प्रकार एक प्रतिभावान नवयुवक छात्र खिलाड़ी के रूप में आपने ओलम्पियन खिलाड़ी के स्तर की ख्याति अर्जित की और खेल एवं शिक्षा जगत के तत्कालीन अधिकारियों को विमुग्ध कर दिया।

स्थानीय, प्रादेशिक, अन्तर्प्रदेशिक एवं राष्ट्रीय स्तर के ओलम्पियाडों में अपनी अद्भुत खेल प्रतिभा निरंतर अभ्यासी, अनुशासित खिलाड़ी के रूप में आपकी उभरती छवि और चहुँ ओर फैली ख्याति ने तत्कालीन अंग्रेज शिक्षा निदेशक श्री कॉक्स एवं मारवाड़ राज्य के शिक्षा मंत्री राव राजा हणुवन्त सिंह की आंखों का तारा बना दिया। शिक्षा निदेशक श्री कॉक्स युवा विद्यार्थियों के लिये पढ़ाई के साथ-साथ खेलों की अनिवार्यता के हिमायती थे और मारवाड़ राज्य के तत्कालीन शिक्षा मंत्री राव राजा श्री हणुवन्तसिंह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के ख्याति नाम 'पोलो' खिलाड़ी थे। युवक खिलाड़ी आर.पी. व्यास इन दोनों खेल प्रेमी उच्चाधिकारियों के चहेते बन गये। खेल जीवन में आपने निष्पक्षता, स्वस्थ खेल भावना, सहयोग-सौहार्द, कुशल नेतृत्व, वाक्संयम, आत्मविश्वास और अनुशासित जीवन जैसे चारित्रिक गुणों का विकास किया। कालान्तर में ये ही सारे गुण आपके बहुआयामी व्यक्तित्व के आधार स्तम्भ बने।

खेल-प्रतिभा से जीविकोपार्जन का पूर्वार्ध

अपने विद्यार्थी जीवन में अध्ययन मनन की अपेक्षा खेलों को प्राथमिकता देकर युवा रामप्रसाद व्यास ने खेलों के नाना कीर्तिमान स्थापित किये। पदक, सम्मान, क्लर्स-स्टार्स जैसे खेलांकृतों से विभूषित होकर जब आपने जीविकोपार्जन के क्षेत्र में प्रवेश की ठानी तो बिना किसी प्रतिस्पर्धा के आपके समक्ष नौकरियों की कतारें लग गयी। खेल प्रेमी अंग्रेज प्रशासकों ने अपने

चहेते उदीयमान युवा खिलाड़ी के लिये रेलवे, शिक्षा विभाग, सैनिक प्रशिक्षण केन्द्र और सैन्य सेवाओं में मनमर्जी से नौकरी स्वीकारने के खुले अवसर प्रदान कर दिये।

उन दिनों जोधपुर का चौपासनी हाई स्कूल खेल पटुता, शौर्य पराक्रम प्रशिक्षण एवं छात्र अध्यापक अनुशासन का आदर्श शिक्षण संस्थान था और खेल प्रेमी कॉक्स साहब इस स्कूल के प्रिन्सीपल एवं शिक्षा निदेशक थे। युवक आर.पी. व्यास ने अति उत्साहित खिलाड़ी होने के कारण, खिलाड़ी प्रशिक्षण को तरजीह देते हुए, इसी स्कूल में इन्टरग्रेड शिक्षक के रूप में जीविका आरम्भ की और शीघ्र ही स्कूल के सर्वाधिक लोकप्रिय शिक्षक बन बैठे। चौपासनी शिक्षण संस्थान की खेल प्रतिभाओं को निखारने, उनकी ज्ञान पिपासा को संतृप्त करने के नित्य नैमित्तक कर्तव्य कर्मों में आप जी-जान से जुट गये। आपकी लोकप्रियता और अनुशासित जीवन पद्धति की उत्तरोत्तर परीक्षा की घड़ी अभी शेष थी।

राजपूती शौर्य-पराक्रम की धरोहर के रूप में युद्ध की तैयारी के निमित्त सैनिकों की भर्ती और राजपूतों के शौर्य पराक्रम के प्रशिक्षण के लिये मारवाड़ नरेश ने वर्तमान पुलिस लाईन्स के सामने, एक कोठी में 'सैन्य प्रशिक्षण स्कूल' खोला और कॉक्स साहब की सलाह पर आपको प्रतिनियुक्ति पर, उसका प्रिन्सीपल नियुक्त कर दिया।

सैन्य प्रशिक्षण स्कूल का प्रिन्सीपल कोई सिविलियन कैसे बन सकता है? मारवाड़ के सैन्याधिकारियों, ठाकुरों-मुसाहिबों में बहस छिड़ गई। कई उच्चधिकारियों की भींहे तन गयी, परन्तु कॉक्स साहब के प्रभाव से मामला दब गया और विवाद कुछ समय के लिये टल गया। खेल प्रशिक्षण से सैन्य प्रशिक्षण संस्थान की प्रशासनिक जिम्मेदारी को व्यासजी ने नाना व्यवधानों के बावजूद बड़ी कुशलता से निभाया। कॉलेज जीवन की एन.सी.सी. ट्रेनिंग के साथ-साथ खिलाड़ी की आक्रमकता, अनुशासनबद्ध आत्मविश्वास इस प्रबन्धन-प्रशासन में सहायक हुआ। कुछ समय के बाद ग्रेजुएट ग्रेड में पदोन्नत हो, तबादले पर आपको सांभर जाना पड़ा। हीरे की चमक कभी मन्द नहीं होती, सांभर में भी आदर्श शिक्षक के रूप में आपकी कीर्ति चहुं ओर फैलने लगी। आस-पड़ोस की स्कूलों के हैडमास्टर्स के बीच, श्री व्यासजी को अपनी-अपनी शालाओं में लाने की होड़ मची, सभी कॉक्स साहब से सम्पर्क

साधने लगे तो उन्होंने गुदड़ी के लाल को अन्यत्र भेजने की बजाय अपने ही पास, जोधपुर के दरबार स्कूल में बुलवा लिया।

‘अपदीपोभव’

जोधपुर के दरबार स्कूल में अध्यापन के दौरान व्यासजी ने अनुभव किया कि उनके अन्य सहकर्मी अध्यापक शैक्षणिक योग्यताओं में उनसे बढ़ चढ़ कर थे। दरबार स्कूल का शैक्षणिक वातावरण चौपासनी एवं उनके कार्यक्षेत्र की दूसरी स्कूलों से सर्वथा अलग था। वहां खेलों की बजाय अध्ययन-अनुशीलन पर अध्यापन करते हुए आपने जब अपने भविष्य के बारे में चिन्तन किया तो उन्हें अपनी भूल का एहसास हुआ। मन में विचार उठा अध्ययन पर खेलकूद को वरियता देकर, शैक्षणिक योग्यताओं की उपेक्षा करके अध्यापन जीवन में उज्ज्वल भविष्य की कामना मृग-मरिचिका नहीं है तो क्या है ?

युगीन परिस्थितियों में भी बदलाव आ रहा था। भारत स्वतन्त्र हो गया, खेल-प्रतिभा पारखी कॉक्स साहब जैसे अंग्रेज प्रशासक भारत से विदा ले रहे थे। राजस्थान प्रान्त गठित हो गया और श्री जयनारायण व्यास के नेतृत्व में लोकप्रिय मंत्री मंडल ने प्रदेश की बागडोर संभाली। राजाशाही का जमाना खत्म होते ही खेलों को राज्याश्रय मिलना बंद हो चुका था। नई सरकार के अधिकारियों की दृष्टि में उदीयमान खिलाड़ियों द्वारा अर्जित कीर्तिमानों, पदकों, कलर्स-स्टार्स का कोई महत्व शेष न था। एम.ए., एम.एस.सी. और पीएच.डी. की डिग्रियां लिये इतर प्रदेशों के लोग राजस्थान प्रदेश में प्राध्यापक बनकर आ रहे थे। अध्यापन क्षेत्र में शैक्षणिक योग्यताओं का ही सर्वत्र बोलबाला था। ऐसे संक्रमणकाल में कीर्तिमान नवयुवक खिलाड़ी ने खेल का मैदान छोड़कर पुस्तकालय में बैठकर, एम.ए., पीएच.डी. जैसी उच्च शैक्षणिक योग्यताओं को अर्जित करने का संकल्प लिया। महापुरुषों और संतों के जीवन दर्शन अध्ययन के दौरान व्यासजी को भगवान बुद्ध द्वारा अपने शिष्य भद्रक को दिये अंतिम सूत्र-बुद्ध उपदेश ‘अपदीपोभव’ से बहुत प्रेरणा मिली। ‘अपदीपोभव’ (अपना दीपक स्वयं बनो) यही बुद्ध का अंतिम उपदेश था। जिसका आशय यह है कि स्वयं को निर्लिप्त बनाकर, आत्मा की पूर्ण ईमानदारी से कर्म करें तो आनन्द की प्राप्ति के साथ सारे संकल्पों की सहज पूर्णति हो जाती है। बस इसी सूत्र वाक्य का सदैव के लिये गांठ बांधकर

युवा अध्यापक श्री व्यास ने महाविद्यालय में व्याख्याता बनने का संकल्प लिया और गहन अध्ययन मनन में जुट गये। उन दिनों की बात है जब जोधपुर के जसवन्त कॉलेज में इतिहास की स्नातकोत्तर कक्षाएं (एम.ए.) प्रभात में और कानून (लॉ) की संध्याकाल में लगा करती थी। आपने एम.ए. इतिहास में प्रवेश लिया और गहन अध्ययन मनन एवं परिश्रम से इतिहास में एम.ए. की उपाधि अर्जित की और साथ ही साथ आपने एल.एल.बी. पास कर कानूनवेत्ता बनकर, जीविका कमाने का अतिरिक्त मार्ग भी प्रशस्त किया। जब राजस्थान प्रदेश की लोकप्रिय सरकार ने उच्च शिक्षा प्रसार हेतु अनेकानेक नये महाविद्यालय खोले तब आप डीडवाना के राजकीय महाविद्यालय में इतिहास के व्याख्याता (लेक्चरर) नियुक्त हुए। कालान्तर में स्थानान्तरण होकर आप पहले सरदारशहर राजकीय कॉलेज में कार्यरत रहे और बाद में जोधपुर में नव्य स्थापित एस.एम.के. कॉलेज में इतिहास के प्राध्यापक पद पर कार्यरत हुए। सन् 1962 में आप जोधपुर विश्वविद्यालय में इतिहास के व्याख्याता पद पर नियुक्त हो गये।

लक्ष्य की ओर तेजी से बढ़ता खिलाड़ी जैसे पीछे मुड़कर नहीं देखता, वैसे ही व्यासजी इतिहास अध्येता के उत्तरोत्तर कीर्तिमान सेमिनार, पत्रवाचनों के माध्यमों से अर्जित करने की धुन में लग गये।

धुन के धनी, प्राध्यापक रामप्रसादजी ने ख्याति प्राप्त इतिहासविद् डॉ. बनारसीदस सक्सेना के निर्देशन में 'रोल ऑफ नोबेलिटी इन मारवाड़ (1800-1873)' विषय पर जोधपुर विश्वविद्यालय से पीएच.डी. उपाधि अर्जित की। कालान्तर में प्रो. दशरथ शर्मा भी आपके शोध निर्देशक रहे।

वर्ष 1970 ई. में आप जोधपुर विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग में रीडर चयनित हुए और 1982 ई. में विभाग के अध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त हुए। इस प्रकार जीवन के पूर्वाद्ध में खेल-कूद को वरियता देकर जैसे आप कीर्तिमान खिलाड़ी बने, जीवन के उतराद्ध में वैसे ही कीर्तिमान अध्यापक एवं इतिहास अध्येता बनकर गौरव मंडित हुए।

संयमव्रती: समय के प्रहरी

खेल-कूद के अभ्यासी जब खेलों के मैदान छोड़कर अध्ययन-अध्यापन के गुरुत्तर कार्य में प्रवृत्त हो ग्रंथों के अनुशीलन में व्यस्त होने लगे

तो अचानक मधुमेह यानि डायबिटीज की घातक बीमारी ने आ घेरा। युवा शरीर की रक्त शिराओं में जब आनुवंशिक और वसायुक्त गारिष्ठ भोजन की अधिकता से पाचनतंत्र बिगड़ जाता है, तब यह रोग व्यक्ति को लग जाता है। व्यासजी ने अपनी नित्य-नैमित्तिक जीवनचर्या को, संयम की प्रचंड अग्नि में तपाकर, रुग्णकाया को अंग्रेजी चिकित्सापरक निदान की अपेक्षा प्राकृतिक निदान से कुन्दनवत् बनाने की ठानी और अन्ततोगत्वा सफल हुए। इसके लिये सबसे पहले आपने अनिवार्य शारीरिक व्यायाम के लिये, नियमित एक-डेढ़ घंटे टेनिस खेलना आरम्भ किया। नियमित सैर के लिये आपने घर (आसोप की पोल) से विश्वविद्यालय तक पैदल जाना-आना शुरू किया। अपनी भोजन प्रणाली में आमूल परिवर्तन कर आपने नित्य खान-पान को संयमित किया। सन्तों का कथन है-“यदि अपने विचारों पर अपना अधिकार चाहते हो तो अपनी रसना पर अधिकार कर लो।” ऐसा देखा गया है कि जिन्होंने भोजन पर अधिकार किया है, उन्होंने अपने मन पर तो अधिकार किया ही है बल्कि आगे जगत् पर भी अधिकार कर पाये हैं। प्रो. रामप्रसाद जी व्यास पर यह सन्त कथन पूरी तरह चरितार्थ होता है।

सर्वविदित है कि पुष्टिकर ब्राह्मणों का चटोरापन उनका नित्यप्रति का भोजन बहुत गरिष्ठ एवं भारी तो होता है फिर विवाह आदि पर्वोत्सवों का खाना तो छप्पन भोग बन जाता है। प्रो. रामजी ने मिष्ठान, अत्यधिक घी-तेल और मसालों के साथ-साथ आलू-चावल जैसे खाद्यान्नों का पूर्ण बहिष्कार कर दिया और उबली सब्जी, सादी पकी मूंग की दाल, दानामेथी के साथ दो बिना चुपड़े फुलकों की खुराक, दोनों वक्त लेनी शुरू की। जीवनपर्यन्त आप ऐसा ही सादा भोजन लेते रहे। ‘मधुमेह’ रोग ऐसा भागा कि पलट कर भी उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा। इस भोजन संयम और नियमित पैदल-दौड़ का सुफल हुआ कि आपकी शारीरिक स्फूर्ति और तेजगति पुनः युवाओं से होड़ लेने लगी।

किसी मनोवैज्ञानिक ने बताया है कि जब मनुष्य समय की पाबन्दी का अभ्यास करते-करते उससे लयबद्ध हो जाता है, तब भौतिक घड़ियों पर उसकी आश्रिता समाप्त हो जाती है। क्योंकि तब उसके स्नायुतंत्र में कायिक घड़ी (बॉडी वॉच) विकसित हो जाती है। ऐसी स्थिति में वह समय का गुलाम न होकर उसका प्रहरी बन जाता है। कैसा भी, कोई भी अलार्म उसके

बोध संकेत से पूर्व बज ही नहीं सकता क्योंकि अलार्म में बजने वाले समय के पांच-सात मिनट पूर्व से ही स्नायुविक अलार्म उस व्यक्ति के समय बोध को जाग्रत कर देता है। इसीलिये वक्त के पाबन्द लोग 'समय प्रहरी' हो जाते हैं। आज की लेट-लतीफी रियायत में भले ही ऐसे लोग, वक्त की पाबन्दी को कोसते हैं, परन्तु आदतन वे विवश होते हैं।

जोधपुर विश्वविद्यालय में इतिहास विशयगत एम.ए. की प्रभातकालीन कक्षाएं प्रातः 7 बजे से आरम्भ होती थी। प्रातः 7 बजे शुरू होने वाला पहला पीरियड कोई भी प्राध्यापक पढ़ाने को तत्पर नहीं होता था क्योंकि उसके लिये बहुत सेवेरे आना जो पड़ता था। प्रो. आर.पी. व्यास जी की अलार्म प्रभाव वेला का कलरव था। पक्षियों के कुंजन पर शैया त्यागने की बरसों पुरानी आदत के कारण, उन्हें अल्ल सुबह तैयार होकर विश्वविद्यालय पहुंचने में कोई दिक्कत न थी। अतः उन्होंने लगातार कई वर्षों तक पहला पीरियड वक्त की पाबन्दी के साथ पढ़ाया।

सर्दी, गर्मी और बरसात ऋतु आये-जाये पर वक्त के पाबन्द प्रो. व्यासजी पीरियड के ऐनवक्त कक्षा में प्रवेश करते दिख पड़ते। अनेक बार कड़कड़ाती सर्दी में मुंह से बाफें निकालते या बरसात की रिमझिम में मल्हार गाते मस्तमौला विद्यार्थी प्रो. व्यास की समयबद्धता को लेकर शर्ते लगाते परन्तु नकारात्मक पक्ष सदैव हानि उठाता। प्रो. व्यासजी की चुस्ती-फुर्ती और तेजगति से प्रभावित उनके विद्यार्थी मजाक-मजाक में उन्हें आता देखकर 'ग्यारह नम्बर की बस राईट टाईम' की उक्ति फुसफुसाकर शीघ्र कक्षा में प्रवेश कर जाते थे। इस परिहास प्रशस्ति में प्रो. व्यासजी की, छात्रों में लोकप्रियता की झलक मिलती है।

यद्यपि मैं, इतिहास का विद्यार्थी नहीं हूँ तथापि मैंने सुनी है एक ऐतिहासिक किंवदन्ती-इंग्लैण्ड की महारानी ऐलिजाबेथ (प्रथम) अपने को वक्त की पाबन्द मानती थी और इसका प्रदर्शन प्रायः किया करती थी। जब महारानी महल से निकलकर अपनी अंगरक्षक सैन्य टुकड़ी की सलामी लेती तब समीप ही स्थित विशाल टावर पर टंगी घड़ियां दस बजाती थीं, भले ही समय कितना ही क्यों न हो। वह ठहरी इंग्लैण्ड की महारानी, उसे वक्त की पाबन्द होने पर गर्व था। उस गर्व के रक्षार्थ बेचारा टावर कर्मचारी घड़ी की सुईयां पकड़ कर बैठ सकता था। व्यासजी ठहरे विश्वविद्यालय के एक

शिक्षक, उन्हें वक्त के पाबन्द होने की आदत जो ठहरी, परन्तु इतिहास विभाग के चपरासी को प्रो. व्यासजी की समय पाबन्दी पर गर्व और पूरा भरोसा था। वह व्यासजी के कक्षा प्रवेश पर प्रातः 7 बजे अपनी और विभाग की घड़ियां जरूर मिला लिया करता था। उसको न तो किसी बी.बी.सी. अथवा अन्य समय तंत्र की जानकारी थी, बस एकमात्र विश्वास प्रो. व्यासजी के आगमन का था। ऐसे समय के प्रहरी थे प्रो. आर.पी. व्यास जी।

कालान्तर में प्रो. रामजी ग्यारह नम्बर की बस की बजाय दो पहियों वाली साईकल पर सवारी करते हुए विश्वविद्यालय पहुंचने लगे। आसोप की पोल स्थित अपने आवास से, बहुत तड़के साईकिल भगाते जसवन्त कॉलेज मार्ग की ओर बढ़ते हुए आपको प्रातःकालीन मंगला दर्शनार्थी प्रायः देखा करते थे। दोपहर में लौटती बार, विजयी सिपाही की प्रफुल्ल मुद्रा में हंसते-मुस्कराते, किसी संगी साथी से बतियाते, बोझिल साईकिल को हाथ में थामे, पदयात्री से पुनः इस मार्ग पर आपके दर्शन हो जाते।

जोधपुर विश्वविद्यालय में एक अध्ययनशील, संयमी, अनुशासित, सुसंस्कृत, निडर, स्वाभिमानी एवं निरपेक्ष व्याख्याता के आदर्श रूप में आपकी ऐसी छवि बनी, जिसकी प्रशस्ति सभी सहकर्मी प्राध्यापक किया करते थे। अनेक वर्षों तक प्रो. व्यासजी छात्रावास के अधीक्षक, चीफ प्रॉक्टर डीन एवं छात्रों के विश्वस्त परामर्शदाता का अपवाद मुक्त कार्यकाल पूर्ण किया। छात्र असन्तोष के उफनते ज्वारकाल में भी आप अडिग सिद्धान्तवादी चीफ प्रॉक्टर रूपी प्रकाश स्तम्भ बने रहे। कॉलेज एन.सी.सी. युनिट के भी आप अधिकृत संचालक रहे।

प्रो. आर.पी. व्यास जी के पढ़ाये नाना शिष्यों ने, प्रदेश के कई महाविद्यालयों-विश्वविद्यालयों में अध्यापन कर अपार ख्याति अर्जित की। अनेक ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे और प्रायः सेमिनारों में, अपने उत्तरोत्तर ज्ञानवर्धक के लिये छाये रहते हैं। राजस्थान इतिहास, विशेषकर मारवाड़ के इतिहास, राजस्थानी भाषा और साहित्य के एनसाईक्लोपीडीया के नाम से ख्यात प्रो. जहूर खां मेहर को अपने गुरुवर्य प्रो. आर.पी. व्यासजी की असाधारण प्रतिभा और मेधा पर गुमान है। प्रो. देवनारायण आसोपा और प्रो. सौभाग माथुर भी प्रो. आर.पी. व्यास के ख्यातनाम शिष्य रहे हैं।

इतिहास पुरुष

किसी कालखण्ड विशेष में घटित घटनाक्रमों का राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन-विश्लेषण की संज्ञा यदि इतिहास है, तो प्रो. आर.पी. व्यास को 'इतिहास पुरुष' कहा जा सकता है। आपका समूचा जीवन मारवाड़ और पुष्करणा समुदाय की गौरवशाली ऐतिहासिक सांस्कृतिक परम्परा की ही एक कड़ी प्रमाणित होता है।

मारवाड़ इतिहास प्रसिद्ध महादानवीर राजव्यास श्री नाथोजी के वंशज भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि में, मारवाड़ सामन्तशाही के प्रभावशाली अंग्रेज शिक्षाधिकारियों के चहेते और तत्कालीन ओलम्पियाड के कीर्तिमान खिलाड़ी। खेल जगत में अपना इतिहास बनाने वाले। इतिहास विषय में एम.ए., पी-एच.डी. की योग्यता अर्जित करने वाले इतिहासवेत्ता, व्याख्याता और जोधपुर विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के पहले पी-एच.डी. डॉ. व्यास की पी-एच.डी. भी अद्भुत और अनोखी 'रोल ऑफ नोबेलिटि इन मारवाड़ 1800-1873 ए.डी.' यानि ई. सन् 1800-1873 के कालखण्ड में मारवाड़ में सामन्तवाद की भूमिका। विश्वविद्यालय में अध्यापन के साथ-साथ आपने अनेकानेक ऐतिहासिक ग्रंथों का निरूपण किया। इतिहास विषय में शोधकार्य हेतु सहकर्मि प्राध्यापकों एवं मेधावी छात्रों को अनुप्रेरित किया। शोध निर्देशक के रूप में अनेक शोधार्थियों का शोध कार्य में मार्गदर्शन किया।

महान् ऐतिहासिक नायकों यथा महाराणा प्रताप, मेवाड़ महाराणा राजसिंह, महाराणा कुम्भा, श्री जयनारायण व्यास आदि के जीवन पर ऐतिहासिक ग्रंथ लेखन से सम्मान एवं पुरस्कार अर्जित किये। मारवाड़ इतिहास पर लेखन एवं शोधकार्य में योगदान हेतु मारवाड़ के भूतपूर्व महाराजा श्री गजसिंहजी ने वर्ष 2000 ई. में आपको 'पालकी सिरौपा' प्रदान कर सम्मानित किया। मेहरानगढ़ स्थित महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध संस्थान के मुख्य परामर्शदाता एवं म्युजियम ट्रस्ट द्वारा प्रदान किये जाने वाले नाना 'मारवाड़ रत्न' पुरस्कार सम्मान, चयन समिति के संयोजक के रूप में आपने कई वर्षों तक कार्य किया। उसी ट्रस्ट ने आपको ससम्मान 'मारवाड़ रत्न' पुरस्कार देकर आभार व्यक्त किया।

वर्ष 1967 में प्रो. आर.पी. व्यास जी ने 'राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस' की स्थापना की और वर्ष 1967-70 तक इसके जोईन्ट सेक्रेटरी(वर्ष 1970-76 तक सेक्रेटरी, वर्ष 1984 में प्रसीडेन्ट बने। वर्ष 2009 में राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस के महिला पी.जी. महाविद्यालय में आयोज्य 'राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस' के 25वें सत्र की दूसरी बार अध्यक्षता करने का गौरव आपको मिला।

असंख्य शोधपत्रों का वाचन-प्रकाशन प्रो. आर.पी. व्यास द्वारा समय-समय पर यत्र-तत्र आयोज्य सेमिनारों में किया गया। उनके सम्पूर्ण व्यौरे के लिये एक पृथक ग्रंथ लिखा जा सकता है।

ऐसी विशद, गहन अध्ययन-मनन, शोधपरक इतिहास विषयक मील पत्थरों से गुजरती हुई, जीवन के 93 वर्षों में पूर्ण हुई, इतिहास पुरुष की लोकयात्रा।

कर्मयोगी प्रो. आर.पी. व्यास की समाज सेवा

कठोपनिषद में मानव जीवन की सार्थकता के लिये चार ऋणों से उऋण होना, अनिवार्य बताया गया है। वे चार ऋण हैं-1. मातृ-पितृ ऋण 2. देव ऋण 3. ऋषि ऋण (गुरु ऋण) 4. भूमा ऋण। बताया गया है कि इन ऋणों से उऋण हुए बिना मानव को मुक्ति नहीं मिलती।

जिस प्रकार व्यक्ति के माता-पिता ने वैदिक संस्कार के अनुसार विवाह करके, अपने परिवार को पुत्र-पुत्री आदि संतानों का उपहार समाज को दिया है। उसी प्रकार हर एक सुयोग्य एवं स्वस्थ व्यक्ति को विवाह परम्परा से, परिवार को संतान संपदा से समृद्ध करना चाहिये। न जाने किस वंश परम्परा से जगद् गुरु शंकराचार्य, वल्लभाचार्य, श्री रामकृष्ण और विवेकानन्द जैसी विभूतियों का प्राकट्य हो जाये। प्रो. आर.पी. व्यासजी ने मातृ-पितृ ऋण मुक्ति हेतु एवं अपने गृहस्थ जीवन को अनुकरणीय बनाया और वे तीन-तीन सुयोग्य पुत्रों के जनक बने।

देवों ने धरती, जल, वायु, अग्नि जैसे मूलभूत तत्व हम भूमिवासियों को निजकल्याण एवं जीवनयापन के लिये प्रदान किये। हम अपने श्रम से इनका दोहन करे, अपनी आवश्यकतानुसार और शेष छोड़ दे अन्यजनों के उपयोगितार्थ। अन्न, वस्त्र, भौतिक संपदा, धनादि का उपयोग व्यष्टि से समीष्ट तक के लिये सुगम हो। प्रो. व्यासजी महादानवीर नाथोजी के ऐसे ही वंशज हैं।

हजारों वर्षों पूर्व से ऋषि गुरुजनों ने जो विविध ज्ञान संपदा पीढ़ी-दर-पीढ़ी हम तक पहुंचाई है और उस ज्ञान से लाभान्वित हो, हम जीविकोपार्जन कर रहे हैं। वही ज्ञान नवोदित पीढ़ी को हमें देकर जाना है। इसके लिये अध्यापकीय जीविका के अतिरिक्त भी हमें निर्धन, अपंग एवं सर्वहारा वर्ग के छात्र-छात्राओं को निःशुल्क ज्ञान दान देना चाहिए। प्रो. आर.पी. व्यास जी ने इस कर्तव्य कर्म को सर्वोच्च प्राथमिकता साथ से जीवनपर्यन्त निभाया। 31 अगस्त, 1982 में श्री जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग में प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त होने पर, शेष सारा जीवन आपने शिक्षा के प्रचार, प्रसार और शैक्षणिक प्रबन्धन में ही व्यतीत किया। जीवन की अंतिम घड़ी तक आप, अपने द्वारा स्थापित महिला पी.जी. महाविद्यालय की शैक्षणिक गुणवत्ता में श्रीवृद्धि की चर्चा करते हुए मोक्षलीन हुए।

शिक्षा क्षेत्र में प्रो. आर.पी. व्यासजी का योगदान

कठोपनिषद् में 'भूमा ऋण' के विषय में बताया गया है—व्यक्ति समाज की इकाई है, व्यक्तियों से समूह और भिन्न व्यक्ति समूहों से बनता है समाज। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य कर्म है कि ब्रह्मचर्य, गृहस्थ से वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करते ही स्वहित से परहित की ओर उन्मुख हो जाये। यानि स्वार्थ को तिलांजली देकर परमार्थ में पूरी निष्ठा से जुट जाये। 'भूमा' का तात्पर्य समष्टि हित से है। प्रो. आर.पी. व्यासजी ने तो 60 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्त होते ही, समाज की शिक्षा सेवा करने का बीड़ा उठा लिया। आप पुष्टिकर एज्यूकेशन ट्रस्ट के ट्रस्टी बने। डेढ़ सौ वर्ष पुरानी इस एज्यूकेशन ट्रस्ट द्वारा चार शिक्षण संस्थाएं संचालित होती थी—श्री सुमेर पुष्टिकर सीनियर सैकेण्डरी स्कूल, श्री जयनारायण व्यास बालिका विद्यालय, श्री जयनारायण व्यास पब्लिक स्कूल (इंग्लिश मीडियम) और बाड़मेर स्थित श्री जयनारायण व्यास बी.एड. कॉलेज। ट्रस्टी होने के साथ-साथ प्रो. व्यासजी इन सभी शिक्षण संस्थानों के सेवाव्रती प्रबन्ध सचिव रहे। वर्ष 1987 से 2001 तक की 14 वर्षीय अवधि में आपने बन्द होने के कगार पर पहुंचे हुए इन शिक्षण संस्थानों को नया जीवन देकर नगर के सर्वोत्कृष्ट शिक्षा संस्थानों के स्तर तक पहुंचा दिया। भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, अनुशासनहीनता और कमजोर प्रबन्ध व्यवस्थाओं के कारण पुष्करणा समाज की इन शिक्षण संस्थाओं को कलंक एवं अपयश का ग्रहण लगा हुआ था, जिसके फलस्वरूप इनके बन्द

होने की नौबत आ चुकी थी। कर्मठ कर्मयोगी प्रो. व्यासजी ने समाज सेवा भाव से अपने प्रबन्धक सचिव कार्यकाल में लगभग एक करोड़ रुपये ट्रस्ट संपत्ति के किराये, जनप्रतिनिधियों की निधियों एवं दानादाताओं से जुटाकर इन शिक्षण संस्थाओं को पुनर्जन्म प्रदान किया।

लोकनायक श्री जयनारायण व्यासजी नारी शिक्षा-दीक्षा के हिमायती थे। उनके नाम से पुष्टिकर समाज की शिक्षण संस्थायें, एज्यूकेशन ट्रस्ट द्वारा संचालित भी हो रही थी। परन्तु उनका स्तर स्कूलीय शिक्षा तक ही सीमित था। उच्च अध्ययन के लिये समाज की छात्राओं को विश्वविद्यालय द्वारा संचालित कमला नेहरू गर्ल्स कॉलेज जान पड़ता था।

उस जमाने में जब माता-पिता बेटियों को स्कूल भेजने से भी कतराते हों, नगर से बहुत दूर राईका बाग रेल्वे स्टेशन के समीप स्थित के.एन.यू. कॉलेज में लड़कियों को उच्च अध्ययन के लिये भेजने को कैसे रजामंद होते? अतः समाज की अधिकतर छात्राएं उच्च शिक्षा से वंचित रहने को विवश थी। प्रो. आर.पी. व्यासजी ने वर्ष 1987 में मात्र 41 छात्राओं से पुष्टिकर सी.सै. स्कूल में ही, महिला महाविद्यालय की स्थापना कर दी। प्रो. व्यासजी के इस पुनीत कार्य में तत्कालीन गणमान्य प्रशासकीय एवं शिक्षाधिकारी भी सहयोगी बने और उन आठ विशिष्टजनों ने संयुक्त रूप से मिल बैठकर 'श्री जयनारायण व्यास शिक्षण संस्थान' नामक ट्रस्ट गठित की, इसका पंजीकरण करवाया और इस ट्रस्ट के अधीन महिला महाविद्यालय संचालित करने का निर्णय लिया। श्री जयनारायण व्यास शिक्षण संस्थान की स्थापना के अष्ट स्तम्भ महानुभावों का नामोल्लेख इस प्रकार हैं-1. श्री जगन्नाथ जी पुरोहित 2. प्रो. जे.के. व्यास 3. प्रो. श्रीचन्द थानवी 4. श्री श्यामकिशन जी व्यास 5. प्रो. ए.डी. बोहरा 6. प्रो. हरदत्त जी पुरोहित 7. श्री शिवलाल जी व्यास और आठवें स्वयं प्रो. आर.पी. व्यास। श्री सुमेर पुष्टिकर सीनियर सेकेण्डरी स्कूल की स्वर्णधूली में 2 अक्टूबर 1987 को जिस महिला महाविद्यालय का बीजारोपण मात्र 41 छात्राओं से हुआ, प्रो. रामप्रसाद एवं उनके सहयोगी बौद्धिकजनों के अथक प्रयासों से कालान्तर में सिवांची गेट के बाहर स्थित श्री जयनारायण व्यास बालिका सीनियर सेकेण्डरी स्कूल भवन से उसका पौधा लहलहाया, आर्ट्स और कॉमर्स फेकल्टी में छात्राओं की संख्या सहस्र पार कर गयीं। छात्राओं की संख्या में अप्रत्याशित बढ़ोतरी का

कारण महाविद्यालय के परीक्षा परिणाम और छात्राओं का संयमित अनुशासन ही था। 2 अक्टूबर 2002 में महिला महाविद्यालय कमला नेहरू नगर में, सूरसागर रोड पर अपने स्वयं के नव-निर्मित भवन में जा स्थापित हुआ। कालान्तर में आर्ट्स, कॉमर्स के साथ विज्ञान विषय में भी महाविद्यालय में स्नातकोत्तर स्तर का उच्च अध्ययन शुरू हुआ। आज 3500 छात्राओं की संख्या वाला महिला पी.जी. महाविद्यालय सूर्यनगरी में नारी शिक्षा का कीर्तिमान ज्योति स्तम्भ है। श्री जयनारायण व्यास शिक्षण संस्थान द्वारा संचालित इस महाविद्यालयी संकुल में महिला पी.जी. महाविद्यालय के साथ-साथ दो अन्य 'प्रो. ए.डी. बोहरा मेमोरियल विमेन लॉ कॉलेज' और 'महिला बी.एड. कॉलेज' भी संलग्न हैं। डॉ. आर.पी. व्यासजी द्वारा पुष्टिकर स्कूल की स्वर्णधूली में रोपा गया नन्हा-सा महिला महाविद्यालय का पौधा आज रजत शिखर (चांदना भाखर) तले विराट बरगद बन कर नारी शिक्षा-दीक्षा की अलख जगा रहा है।

प्रो. आर.पी. व्यासजी महिला महाविद्यालय के आरम्भिक प्रिन्सीपल, कालान्तर में इसकी प्रबन्ध समिति के उपाध्यक्ष, अध्यक्ष रहे। 'श्री जयनारायण व्यास शिक्षण संस्थान' द्वारा संचालित सभी महाविद्यालयों के अध्यक्ष रहते हुए आपने महिला पी.जी. महाविद्यालय को, सेमिनारों का गढ़ बना दिया। जीवन पर्यन्त आप इस शिक्षण संस्थान के पुरोधा संस्थापक अध्यक्ष बनकर इसके सतत् विकास में तत्पर रहे। उसी के फलस्वरूप पहले राज्य सरकार ने इसे 'मॉडल कॉलेज' घोषित किया और वर्ष 2017 में मेहरानगढ़ म्युजियम ट्रस्ट ने महिला शिक्षा में विशिष्ट योगदान के लिये इसे 'मारवाड़ रत्न' पुरस्कार सम्मान से नवाजा। स्वामी विवेकानन्द की शिष्या भगवती निवेदिता युवाओं से संवाद के समय कहा करती थी—“त्याग और सेवा मोक्ष प्राप्ति के लिये नहीं। संसार में लाने-ले जाने का काम भगवान का है। इसलिये मोक्ष प्राप्ति की इच्छा से सेवा कार्य नहीं करना चाहिये। त्याग और सेवा निःस्वार्थ भाव से होनी चाहिये।”

कर्मयोगी प्रो. आर.पी. व्यासजी ने भी निःस्वार्थ भाव से त्याग और समाज सेवा की क्योंकि हमारे विद्यालय, प्रकल्प, कार्य पद्धति, उत्सव आदि सब कुछ व्यष्टि से समष्टि तक-राष्ट्र जागरण, मनुष्य निर्माण के समुचित अवसर, सर्वसुलभ करवाने हेतु ही स्थापित है।

लोक व्यवहार पुरुषोत्तम

महात्मा गांधी ट्रस्टीशिप विचारधारा के प्रबल समर्थक रहे हैं। उन्होंने धनी और निर्धन, श्रमिक और उद्योगपति, धार्मिक संस्थाओं, शिक्षा मंदिरों आदि को एकाधिकार से मुक्त करके समरसता भाव से संचालित करने के लिये ट्रस्टीशिप सिद्धांत पर बल दिया। ताकि व्यक्ति और संस्थायें सुचारू व्यवस्था से बिना किसी द्वेष भाव के, परस्पर प्रेम-सौहार्द से कार्य करें। प्रो. व्यासजी को ट्रस्टीशिप का गहन अनुभव हुआ जब उन्होंने पुष्टिकर एज्यूकेशन ट्रस्ट की सदस्यता एवं कालान्तर में उसकी प्रबन्ध व्यवस्था की जिम्मेदारी ली। व्यासजी ने महिला महाविद्यालय संचालन हेतु पृथक से एक ट्रस्ट 'श्री जयनारायण व्यास शिक्षण संस्थान' नाम से बनायी।

भगवत् कृपा से नथावत व्यास प्रो. आर.पी. व्यासजी का उनके माता-पिता, बहनों-भाईयों का परिवार बहुत विशालकाय रहा है। उदारचेता नाथावत व्यास श्री आईदासजी और उनकी स्नेहवत्सला भार्या, देवी इन्दरकौर के जीवन काल में ही संयुक्त परिवार में सौ के लगभग सदस्य थे। प्रो. आर. पी. व्यासजी समेत पांचों भाईयों एवं तीन-तीन बहनों एवं उनकी संतति को मिलाकर पारिवारिक सदस्यों की संख्या लगभग तीन सौ तक हो गई थी।

इतने विशाल नथावत व्यास परिवार के सभी सदस्य परस्पर सौहार्द और मेल-मिलाप से रहे, प्रत्येक सदस्य की सुख-दुःख व्यष्टिगत नहीं अपितु समष्टिगत रहे। मांगलिक कार्यों में पूरे कुटुम्ब की भागीदार सुनिश्चित हो तथा इस विशाल परिवार में पल्लवित-पोषित संतति भी परस्पर एक-दूसरे से बराबर सम्पर्क में रहे। ऐसे महत् उद्देश्यों से अनुप्रेरित हो प्रो. आर.पी. व्यासजी ने वर्ष 1980 ई. में अपने श्रद्धेय कीर्तिशेष माता-पिता श्री/श्रीमती आईदास-इन्दरकौर की स्मृति में एक पारिवारिक ट्रस्ट की स्थापना की। इस विशाल कुनबे के सभी परिजन, इस ट्रस्ट के सदस्य हैं। ट्रस्ट का प्रत्येक कमाऊ व्यक्ति प्रतिमाह, एक निश्चित दर से प्रतिमाह चंदा देकर ट्रस्ट को आर्थिक अवलम्बन प्रदान करता है। ट्रस्ट की ओर से प्रतिवर्ष दो सामुहिक स्नेह-मिलन एवं भोज्य आयोजित किये जाते रहे हैं। नगर के आसपास किसी रमणिक धार्मिक सांस्कृतिक स्थल पर आयोजित इन सामुहिक अनुष्ठानों में कुटुम्बीजन परस्पर घुल-मिलकर सौहार्द पूर्ण ढंग से परिवार हित के नाना प्रस्तावों पर विचार-विमर्श करते हैं; पारिवारिक समस्याओं का समाधान

करते हैं। खेलकूद और विद्याअर्जन में विशिष्टता प्राप्त करने वाले बाल-गोपाल को पारितोषिक प्रदान कर उत्तरोत्तर प्रगति हेतु अनुप्रेरित किया जाता है। पदोन्नति एवं अन्य विशिष्ट सेवा में योगदान करने वाले सदस्य को माल्यापर्ण से सम्मानित किया जाता है।

सभी महिलाओं एवं पुरुष ऐसे अनुष्ठानों में मनोरंजक खेल-प्रतियोगिताओं में भाग लेकर पुरस्कृत होते हैं। साथ ही प्रत्येक सदस्यों के प्रत्येक मांगलिक अवसरों पर ट्रस्ट की ओर से आर्थिक अनुदान सहयोग किया जाता है। विगत 40 वर्षों से 'श्री आईदास श्रीमति इन्दरकौर ट्रस्ट', आज भी सक्रिय है। कुटुम्ब का वरिष्ठतम सदस्य ट्रस्ट की अध्यक्षता करता है और युवा सदस्य ट्रस्ट कार्यक्रमों की समुचित व्यवस्था।

प्रो. आर.पी. व्यास जी ने अपने मर्यादित आचरण, गृहस्थी की धुरी, अन्नपूर्णा अर्धांगिनी सहचरी का वियोग हलाहल, महादेव बन चुपचाप पी लिया। तीन-तीन विवाहित पुत्रों के भरे-पूरे परिवार के साथ-साथ आप 300 सदस्यीय इस विशाल कुटुम्ब के मुखिया भी आजीवन बने रहे। अपने मधुर संभाषण एवं हास-परिहास पूर्ण सौहार्द से सभी का मन जीत लेने वाले, छोटे बड़े सभी के चहेते 'चाचा' श्री व्यासजी को व्यवहार पुरुषोत्तम कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

प्रेयस और श्रेयस जीवन के नाना आयामों में कीर्तिमान स्थापित अर्जित कर, नथावत व्यास परिवार का यशस्वी भीष्मपितामह, इतिहास पुरुष, लोकमंगल का आग्रही, व्यवहार पुरुषोत्तम महामना डॉ. रामप्रसाद जी व्यास 93 वर्ष की शतायुबेला में 25 जुलाई 2013 को अपना अवतरण कार्य पूर्ण कर, मोक्षगामी हुए। आपने अपने नाम के अनुरूप 'राम' (नाम) और निःश्रेयस (पारमार्थिक उन्नति) का पथ प्रशस्त करना यदि उस त्रेयायुगि राम का प्राणिमात्र पर अनुग्रह है तो उनके नाम प्रसाद की महत्ता कैसे कम हो सकती है।

अस्तु, श्रेयस और प्रेयस जीवन की लोकयात्रा के बटोही कर्मयोगी प्रो. आर.पी. व्यास जी के चरणारविन्द में सश्रद्धेय प्रणतिपाद निवेदित है।

Of Culture & Language : A Case Study of United Provinces

Prof. (Dr.) Himanshu K.Chaturvedi

In the present times, an ordinary observer of political process of communalism may jump to a conclusion that mandir-masjid controversy lies at the very bottom of difference, rather politics of difference between Hindus and Muslims. But examining on the scale of culture-language and its identification with communities the historical interpretation looks very different. However, if one digs out into the historic rumbles of the politics of difference between the two communities, one may find the basis of the creation of difference lies in other form in the province of NWP & Avadh. The Communalization of Hindu/Urdu controversy cannot be simply traced back to divisive politics of colonial rulers. It should also be looked upon as a crisis of new elite that emerged in India in the later half of the nineteenth century. The source of the deeper controversy shall be traced out from the complicated working of the elite politics and caste and communal rivalries, as historians of left leanings have projected. They look upon the issue only in context to administrative and economic structural changes occurring during the times, not accommodating the rise of new identity through language, a powerful ingredient of culture that has been

suppressed deep during the preceding centuries. It cannot be looked upon, as argued by many, only as an anxiety and ambitions of the North Indian Brahmin elite, tormented by the entrenched power of the Muslim upper classes and jealous of the Kayastha monopoly over the service sector, sustained the energies of the Nagari/Hindi movement. Devanagari was opposed not only to the Persian script, but also to Kaithi, a variant of the Nagari script that was popular amongst Muslims and Kayasthas. To some, it may seem logical that to displace a community it was necessary to repress the assumed markers of its identity and cultural basis of its power. But, on the contrary one has to argue that during these changing times (mid of the 19th century) different lingua-cultural groups were shaping up only on the basis of their past roots, each demanding a space mostly denied in earlier times. Thus the hostility towards the Persian script or demand for the language of masses coalesced with the attack against the syncretic culture associated with the hegemonic Awadh Muslim elite with a believe in carrying forward the imposed language not identified with the masses of the region and at some stage was borrowed from the Mughal court as official language of Awadh, fusing the issue of language as a basis of religious division for future. Thus, historically the issue is to looked upon in such light also.

On the contrary it's also a fact that one has to understand that English did not rule India on the power of guns but on the basis of ideology which in the 19th century was a mixture of English thought of colonial governance of civilizing India with clear design of crippling and dividing

the basic features of the civilization itself for its own existence in which Macaulay's policy of civilizing India ended the era of Orientals and process of modernizing Indian communities began. But a serious thought will suggest that Macaulay was only executing the idea of Anglicizing, ideological ground of Biblical intervention was already laid down through William Jones and Cecil Rhodes had contemplated a vision of Imperial World Parliament. Later on other Western Indologists, like H.H. Risley gave further impetus to the process of de-constructing Bharat to reconstruct India, which was greater ideological need suited to the ruler. In the course of such modernization issues related to the system of education in India got directly linked to two vital factors. Firstly what shall be the idea of educating the Indians and secondly the medium of instruction.

The structural changes which started in the 19th century later half, undoubtedly effected the traditional moulds the old society (pre 1857) were vanquished in their final attempt at rehabilitating their former power and status in 1857. They were too exhausted and weakened to embark upon a fresh enterprise in near by future. Thus, the policy of colonizers regarding India underwent a metamorphosis after 1857. Its former orientation towards support of the new progressive forces within the Indian society was replaced by a growing gravitation and support to the conservative forces of that society. New forces proved catalyst in national awakening undoubtedly, termed as 'middle class' but on issues of greater consequences (to avoid divide) they couldn't check the forces unleashed by

British Government in which they were a part consciously or sub-consciously.

The rise of this new class 'middle class' has been subject to many academic arguments between Cambridge scholars and Indian historians with Marxist leanings and to Gramsci's interpretation of organic and inorganic substances. However, this paper does not intend to go in this argument. Only purpose to mention this aspect is to briefly draw attention to the issue on the facts that politics of difference was more closely related to the interests of this class. With the growth of representative institutions and new professions there seems to be political and economic considerations more embedded than religion, at least initially. Later on two major ingredients of culture- language and religion were vociferously used to counter any logical issues. If we take into consideration one important issue of Congress activities in NWP & Avadh, later on United Provinces (henceforth referred as U.P.), one can simply suggest that area is lesser effected with activities of Swadeshi and Revolutionaries till 1906, if compared to Maharashtra and Bengal. Contrary to this, the new Muslim intelligentsia, with its seat at Aligarh, is suggestive enough to reflect that new politics of identification was created in U.P. which was purely politically-economically conscious, later on hijacked by communalist on the issue of separate electorate. This is to suggest, that the environment of change created by the Imperial Government produced new openings accompanied by new challenges for newly emerging middle class. The way they responded initially to such change was the basis of modern communalism, as

suggested that 'modernism and communalism were the two sides of the same coin' On this ground, this paper is an effort to search language as the basis of identification of culture in United Provinces. .

The issue of use of Court language, new government jobs, political seats and medium of instruction in education set the pace for the structural change in Indian society. Of these issues Language and State affairs were prior importance to the governed, as well as to the governing. The government had a clear thought of these issues. However, prior to 1857 language displacement in the official policy was adopted but it did not made any impact, communally. But post 1857 the language issue was the first underlying current which brought two major language groups of U. P. to debate upon their cultural identities culminating to the breaking of the spirit of 1857 which had witnessed the Hindus and Muslims shouldering the common cause. As the political situation in India changed considerably after the failure of Indian uprising of 1857. The resulting political configuration gave rise to a series of problems concerning the adaptation of the politically conscious Indians to the new system. In their attempt to come to terms with the altered political situation, the politically conscious Indians could not offer a common response. They mostly differed sharply among themselves in their interpretation of the situation as well as evaluation of their own roles.¹

Prior to 1857, there had been few noteworthy changes on the issue of language. In 1830 the court of Directors of the EIC advised the government in India to introduce English

as the language of public business in all its departments. But they asked the court of law to be excluded from the operation of this instruction. Their argument for the exclusion of courts was “It is highly important that justice should be administered in language familiar to the litigant parties and to the people at large.² In 1836 the government of NWP, circulated an order in Hindi stating that on account of Persian being the language of the courts the people were put to inconvenience and difficulty, that hence forth they would be free to submit their petitions to the Sadar Board in Hindi written either in Persian or Nagari character, and that the Board and replies would be in the script of the petition. It is evident that though the scripts suggested were two, the language chosen was Hindi. A year later (1837) regional languages in different provinces were substituted for Persian, but in NWP Bihar and CP the choice went in favour of Urdu in Persian script and the Nagari character was shut out.³ However, this did not made any serious impact on communities and largely it was only a governmental affair to decide upon. One may assume that prior to 1857 language was a subject only related to official circles with no political bearings of any magnitude on communities.

The perception that Persianized language could not fulfill social needs was strengthened by the founders of the Fort William College. Since, then emphasis was put more on Hindustani.⁴ Though, outside U. P. (then, it was in 1825 that the British granted Urdu the status of court language) its opposition assumed social colour as revival of Sanskrit was started in Poona and Culcutta. It was the first reactionary sort of lingua movement in the 19th

century, urging upon the use of Devnagari script. Its main purpose was not to rely upon superiority of language rather than search for own identity, and hence on momentum gathered steadily to announce Arabic and Persian as alien languages and attempt started to free the indigenous languages from foreign influence. Resultantly the British welcomed this new development as an opportunity to further divide the two major communities to pitch them against each other.

While emphasizing upon the fact of communal disharmony based upon linguistics, one has to understand the importance of the same in the modern time. Though till 19th century language was (and now also) the chief source of cultural identification but the structural changes which started shaping new India transformed language, along with cultural identification, into commercial identification. Vernacular medium and employment got so intermixed after Wood's Dispatch that in the later half of the 19th century the issue became eco-cultural. It is a truth that, of all the forms of social interaction, the language people speak is the most compelling and enduring source of cultural identity. Cultural identities and differences tend to follow linguistic lines. Major differences in customs, values, attitudes and rituals tend to be accompanied by differences in language and similarity in language tend to reinforce similarities in social behavior⁵, as psychologists and few historians have suggested firmly. But that's where Indian story widely differs from West, as language differences were only one part of identity where as customs, values, rituals and attitude hardly had difference. All erupting from

common root.

Analyzing the Indian situation since ancient times one finds interesting that scholarly interest in language in India is reflected in ancient literary and philosophical writings. Many such works have been credited with detailed linguistic observation. However, none of these work throws any light on the social consequences of the linguistic diversity in India. This is to state that lingua difference didn't have any political bearings⁶

From the above discussion, two conclusions can be drawn regarding language and identity. Firstly, language was not a political question before 1857, though changes were sought by the government in that era and secondly, the cultural and economic questions were not vital issues in context to language as the language of the ruler was different. The sense of common enmity towards British among the Hindus and Muslims in the uprising of 1857 is suggestive enough of the fact that at time was no animosity between two communities on such issues is evident. It would be more interesting if one analyzed the role of language during the uprising of 1857 in the form of slogans for mobilization. A perfect blend of unity can then be witnessed. This can be traced from the files of vernacular press, specially Urdu histories written in Persian and Urdu soon after the suppression of the uprising and a number of Proclamations issued by the rebels during 1857 – 58. The Proclamation indicates simultaneously “*ruin of religious classes specially pandits, faquirs and other learned men.*”⁷ Apart from this the appeal to unity and protection of

*deen aur dharma*⁷ is made in almost all Proclamations issued by Nana Saheb, Khan Bahadur Khan and others. From the linguistic point of view the Proclamation indicate that rebels used a very simple language which one may term Hidustani (already defined in reference), they are bilingual in nature, printed in Nagari and Urdu scripts and languages targeted for commoners. Use of word like *mans*, *paji*, *chohar*, *bairi*, *be-dharma*, *chatur*, and *dhar*, are commonly found.⁸

Use of simple language was not confined to the Proclamations of Awadh. Reference may be made to Khan Bahadur Khan's Bareilly Proclamation. This is addressed to the local chieftains "*ap sab raja log bade dharam aur khoobiyon wale sakhi data, bardasht karne wale bahadur ho aur samhalne wale apne dharma aur auro ke dharma ke ho.*"⁸ In this proclamation words like "*Sarir*" (*Body*), "*Reet*" (*Customs*), "*Rand*" (*Widow*), "*Dharam Sati, Raj Dharam*" (*Duty Of The State*) "*Desh*" (*County*) have been used. It denotes that till 1857, there existed no linguistic dispute between two communities and Urdu, Awadhi and Braj (Brij) phraseology are used extensively.⁹

As the Proclamations are in mixed language, the thrust is also upon Hindu – Muslim unity, as in most cases the emphasis is laid to protect Hinduism and Islam and it is the duty of Indians as a whole. This can be witnessed as in the form of address these Proclamations made such as "*Hindu and Musalman brothers*"¹⁰. The author of Zafarnama, waqya-i-gadar, refers to the rebels slogans in Awadh: "*Deen tu Duee Den, Hindu ka Dharam Musalman*

ka Iman”. Furthermore, rebels assume Hindu and Musalman as descendent from one father “*Ek Pita Ke Duee Putra, Ek Hindu Ek Turk inka choli daman ka saath*”.¹⁰ Durga Das Bandhopadhyay, a British employee posted at Bareilly refers to rebels slogans: “*Hindu Musalman Ek, Ram Rahim Ek, Shri Krishna Allah Ek*”.¹¹ Thus, language as a mode of communication and mobilization in 1857-58 bears enough testimony that there was no politico-cultural difference between Hindu and Muslims, at least on linguistic front.

Within fifty years after 1857 India witnessed the process of change which was unprecedented in its earlier history. The economic policies of the Imperial government along with the spread of western education and administrative changes (chiefly introduction of the local self government and modern courts) produced a new middle class which became the carrier of nationalism and modernism but could not prevent the wedge among the major communities. However, one has to see two emerging parallel lines in interpreting modernism that country witnessed. The social reform movement is essentially a forerunner to the emergence of Nationalism along with certain different catalyst factors also, which has been interpreted only a by- product of western thought process in India by many scholars. But the failure to recognize the importance and substance of the resurgence of Bharat – contesting emerging modern India as a resultant factor of social reform movement, which so far has been grossly overlooked. Especially those in defense of true tradition, have larger role to play in emergence of nationalism which can be termed only as shift to political governance rather

than understanding it as shift from its root. But this has been diametrically argued by many scholars . A definite line of step up process can be clearly drawn, starting from Bankhim to Aurobindo encompassing a political leadership based on the principles of cultural roots, rather than any borrowing from the west. Perhaps each bracketed in this category were driven by a fact that one ought to have faith in its own roots, thus connecting language as a source of cultural inspiration rather than looking at it only as a political-economic issue.

Thus, few among the new middle class became catalyst factor in this drama of friction between Hindu and Muslims, especially in Northern India and U. P. played a leading role in this crisis which started on the issue of language. It was this question of the authenticity of the identity of the languages that led to major cleavage in the language politics of Northern India .Broadly speaking, the linguistic controversy, rather requirement of the professions (post 1857) was now divided into two sections, firstly, What should be the medium of education and secondly, what should be the language of public offices?¹² Both issues clearly were related to the emerging middle class. Question is, was it only on political and economic lines or nationalistic lines need deeper probe?

In NWP while protest began to assert against the Persian laden Urdu within a few years of linguistic change of 1837. The advocacy for Hindi produced some results and in 1854, the government of NWP instructed the district authorities that the village revenue of official papers should be maintained in Hindi and Devnagari script. In 1856,

another order was sent out calling upon junior officer of the Revenue Department to learn the Nagari character and telling them that if they did not carry out the order, their services would be dispensed with.¹³

In NWP, the case of Hindi was taken up by certain individuals of whom one Raja Shiv Prasad was more prominent. As an Inspector of Schools he was a government official also representing the new middle class. He presented the first serious demand diplomatically. He set aside the Hindu – Urdu controversy and merely proposed that the Nagari script should be substituted for that of Urdu. All that Raja Shiv Prasad's proposal meant to secure was the script should be Nagari and the language may continue to be Persian laden Urdu. Both, the protagonists of Hindi and Urdu did not react favourably. The protagonists of Hindi were critical of this and Urdu supporters would not agree to a script which was not suitable for Persian words.¹⁴ Government reply to same was ambiguous. But an interesting reaction to Raja Shiv Prasad's petition can be found in the letter of Sir Sayyed Ahmad Khan (then in London) written to one of his friends, "I have received a news of concern that Hindus are excited on a petition given by Babu Shiv Prasad and they are contemplating to get rid of Persian and Urdu which is so symbolic of Muslims".¹⁴ One must understand that both Raja Shiv Prasad and Sir Sayyed Ahmed Khan were representing the new middle class intelligentsia of U. P. and pro British in their attitudes, which was in transition. The following excerpts from a statement given by the Raja to the education commission gives an idea of the controversy. "It was in 1868 that I wrote

a memorandum on court character in the Upper Provinces. My object was to speak only about the character".¹⁵

Although in 1870s Hindi was adopted as the language of the lower courts, first in Bihar and then in the Central Provinces. British officials in the Upper Provinces resisted the demand, partly on the ground that Urdu was the vernacular at least in Awadh and partly because they did not wish to cause Muslim dissatisfaction.¹⁶ Moreover, recent research has suggested that, as a subject of study in the schools in North-West Provinces and Awadh, Urdu had gained ground relative to Hindi. In 1860-61, 11,490 boys were studying Urdu in govt. schools and in 1873, 48,229, a percentage increase over 219. The equivalent figures for Hindi were 69,134 and 85,820, a percentage increase of 24.¹⁷ Curiously before 1857 there was an institution in Benares opened by a Hindu Philanthropist named Jai Narayan Ghosh which taught English, Persian, Hindi and Bengali. Muslim students freely entered it.¹⁸

By 1870 the new education policy and the administrative and judicial jobs (closely related to professionals) became a matter of prime importance in NWP and Awadh in which language was a crucial factor, specially in judiciary. In NWP and Awadh Muslims held 44.8 and 45.9 percent respectively of the executive and judicial appointments, in relation to an overall population proportion of 13.4 percent. This was incidentally the highest proportion, if compared to Bengal, Madras and Punjab in respect to population verses jobs.¹⁹ Other than this government's new policy of administrative changes brought

district boards and municipalities which started the idea of political identification of community in which again language and identity and mobilization were crucial factors.²⁰ This made the issue of court language a very important factor for the two communities.

The Provincial Report for 1873-74, specifically stated that 71 percent of the boys spontaneously chose to be taught in Hindi in preference to Urdu. The Hindi-Urdu controversy was carried to the Education Commission in bitter stains. The Muslim educationist and reformer Sir Sayyed Ahmed Khan told the commission for Urdu that Hindi was read only by the people of lower ranks, engaged in petty trades. This was a sort of rejection to the script of natives. On the contrary the advocates of Hindi condemned the Persian script as worthless and liable to mislead law court clients, as it was not the language of masses. Hindi case was put forward by Bhartendu Harishchandra, the foremost figure in Hindi literary world. He examined in 50 pages statement the various aspects of Hindi and Urdu and said: "In all civilized countries the language spoken by the people and the character written by them are also used in courts. This is the only country where the court language is neither the mother tongue of the ruler nor the subject."²¹ Further in 1895 – 96 it was found that in Provincial schools the number of student offering Hindi had declined in contrast to Urdu. This fall was again a matter of concern for Hindi leaders. They pleaded with the government that its policy was proving inimical to Hindus and Hindi.

In late 1890's the agitation for introduction of Hindi

in law courts was stepped up. In 1898 a deputation under Pt. Madan Mohan Malviya, perhaps one of the greatest proponent of language-culture-roots and modernism, led the delegation to Lt. Governor on the issue. Decision to the same was take in 1900, the decision to the above is as follows:

1. All persons may present their petition or complains either in Nagari or in the Persian character, as they shall desire.
2. All summons, proclamation and the like in vernacular issuing to the public from the courts or from the revenue officials shall be in the Persian and Nagari characters and the portion in the latter shall invariably be filled up as well as in the former.
3. No person shall be appointed, except in a purely English office, to any ministerial appointment hence forward unless he can read and write both the Nagari and Persian character.²²

Hindi Speakers were not satisfied with this order and took it as the mercy rather than justice and Urdu supporters took it as wrong done to Urdu. They held public meetings and condemned the decision as an attack on Urdu and urged the government to withdraw the orders. Thus, the gulf, which was not political, created in 1837 by the substitution of Urdu for Persian, had no impact upon 1857, but with the turn of the century the two linguistic groups were certainly drifting apart falling into the trap of counterpoise.²³

The Provincial newspapers, by then a popular mode of carrying and creating the opinion, did not left out of the controversy. *Bhartendu* an annual paper, from Mathura, wrote on 20th July 1883- “Why Hindi is not used in municipal departments....., why the municipal acts are not written in Hindi— as use of Urdu is hampering its right progress”. On 16th September 1883 same paper wrote, “The government is following the policies of regional languages in different vernacular regions but Hindi is still tied and put in a well”.²⁴ Another paper ‘*Pradeep*’ from Allahabad (Bal Krishna Bhatt, ed.) laid emphasis on the problems of Persians and Urdu scripts and made mockery of its style. The Urdu press also did not left any stone unturned and on 17th May, 1900 an interesting poetry entitled “Urdu ki apeel” (The address of Urdu) was published in ‘*Avadhpanch*’, in this address Nagari Hindi was pronounced as greatest enemy of Urdu.²⁵

One has to understand, that often scholars tend to argue upon the facts of differentiation between Hindus and Muslims as a by-product of religious differences only, along with the political ambition of newly modernizing India which (modernization) of course was duly based upon colonial ideology of divide and rule in the garb of modernization. One finds it interesting that of the two most powerful aspects of Culture- Language and Religion it was language divide policy of the White Men that led to socio-political and religious differences between Hindus and Muslims in U.P.

Another interesting fact that comes in a sensitive mind is simple, that is to say - who were the native gentlemen

playing a catalyst role in organizing this controversy in their own communities and consciously or unconsciously became a tool in the hands of alien Government's policy of divide and rule. Interestingly one finds that the bearers of the controversy were the representatives of the new middle class, which emerged with the ideals and interests of its own in NWP and Awadh in the later half of nineteenth century. Lets take up two examples. Raja Shiv Prasad was a Government employ, well versed in English and who took up the case of Nagri script as a trusted torch bearer of English masters without giving a second thought for the consequences, as few suggests, but his demand was naturally driven by consciousness to lost identity of a language as Persian had been the court language of Avadh, borrowed from Mughal court in its formative stages. Then one may find Sir Sayid Ahmad Khan reacting to formers proposal and urged upon the need to protect Urdu. But on the contrary he was a champion of English and Western education and his fellowmen shall thrive only by studying the same. Both were in close proximities of Colonial Government and both belonged to the new bhadrlok (immaterial to argue – organic or inorganic bhadrlok) of NWP and Awadh later United Provinces.

The subsequent developments are well recorded in the History of modern India, but unfortunately it was not Mandir-Masjid controversy initially but language issue which broke the spirit of 1857. It may well be argued that there can be no vital assimilation, in such a case, of the imposed culture. And yet the new ideas are assimilated in a fashion. They are understood and imaginatively realized;

they are fixed in language and in certain imposed institutions. A drill in this language and in those institutions induces certain habits of soulless thinking which appear like real thinking. Thus, issue may be understood in such light rather than polemics of economy and political agenda only. In the field of social reform, as stated earlier, we have less cared to understand the inwardness of our own strengths and have bothered less to to examine the sociological principles of the West or else can be universal in their application. One has to agree that no idea of 'one' cultural language can exactly be translated in another cultural language. Every culture has its distinctive 'physiognomy' which is reflected in each vital idea and ideal presented by the culture. And it is a historical fact that Swaraj in idea is basically carried in transcript of language, not always and only driven by economics of politics.

Notes and References:

1. For an account of the problems of this period and responses of different quarters see, C.H. Philips (ed.) (1962): "*The Evolution of India and Pakistan (1858-1947)*" vol. iv: London : Oxford University Press. Also see, S.N.Sen: "*Eighteen Fifty Seven*" Delhi : Publications Division.
2. Ram Gopal:(1966): "*Linguistic Affairs in India*": Bombay : Asia Publishing House. p.162
3. Notes on Indian Affairs, vol.i, 1836, p.30
4. Encyclopedia Britannica states that the Englishmen have called the basic Indo-Aryan language spoken in the plains of Ganges in Northern India as Hindustani. Mir Amanan in the foreword of Bagh-o-Bahar which was written in Fort William College, while explaining peculiarity of this language said "John Gillchrist asked me to translate this tale into Hindustani which is used by the people of Urdu". The implication of this sentence of Gillchrist, as understood by certain Researchers is that in that age there was a difference between Hindustani and

Urdu. For more details see, S.Sanghasen (ed.)(1997) : “*Language problem in India*” New Delhi : Public Institute of Political Science. (sp. S.A.Bari : Urdu : A Victim of Language Fascism)

5. H.C.Lindgren (1972) : “*An Introduction to Social Psychology*” New Delhi : Willey Eastern Private Limited. p.314. Chomsky and the newer group of linguistic approach tends to study language in terms of transformational generative grammar in which they claim that children learn the language of their culture merely by imitation. This makes language so crucial for cultures either to survive in civilization or due to the pressures from economic culture. For details see, Noam Chomsky : (2002): “*On Nature and Language*”.U.K.: Cambridge University Press. (Chomsky’s argument rests on the idea that language faculty is not new, it had its roots in the classical rationalist perspective of studying language as a mirror of the mind.)
6. For linguistic approach, see A.L.Basham (1963) : “*A Wonder that was India*”. New York : New Thorne Books (rev.ed.) For perspective comment on the limited field of communication in which the traditional literati of India performed their function in ancient times, see, Max Weber: (1960) : “*The Religion of India*”. (trans. H.H.Gerth and D.Martiandale) GlenceIII : Free Press. pp.101-140.
7. For details see, Brijji’s Quadir Proclamation of 17, August, 1857. FPP, 30th Dec.1857, NAI, New Delhi, No.193.
8. Khan Bahadur Khan’s Proclamation, text reproduced in Nawab-i-Azadi: Abdul Razzaq (ed.) cf. Iqbal Hussain : ‘Remembering 1857’,in, SNR Rizvi (ed.) “*Proceedings of the U.P. History Congress*” (Gorakhpur Session) p.37.
9. *ibid*; p.37
10. *ibid*; p.38
11. *ibid*; p.38
12. Ram Gopal; *op. cit*; p.169
13. *ibid*; p.170
14. Pamphlet of Hindi Sahitya Sammelan, 18 April,2000 “*Uttar Pradesh Mein Hindi Ka Pahla Shangharsh*” p.2
15. Ram Gopal; *op. cit* p.170
16. Nandalal Chatterjee : (1955) “*The Government’s Attitude to Hindi-Urdu-Hindustani in the Post Mutiny Period*”: Journal of the Uttar Pradesh Historical Society, III, I, p.18

17. Paul.R.Brass : *Muslim Separatism in U.P.*: EPW (Bombay) Annual No.Jan 1970, p.181
18. Report of the Education Commission, 1882 (North Western Provinces) p.8
19. Report of the Public Service Commission, 1886-87 (Calcutta, 1888) p.38
20. For details on the impact of British administrative Changes on communal situation in U.P., see, Francis Robinson: "*Municipal Government and Muslim Separatism in the United Provinces, 1883-1916*", in John Gallagher, Gordon Johnson and Anil Seal (eds.) (1973) : "*Locality Province and Nationalism*", Cambridge : Cambridge University Press.
21. Ram Gopal: op; cit.p.172.
22. *ibid.* p.173
23. Language and Linguistic Problem (Oxford Pamphlets on Indian Affairs) pp.20-21
24. Ram Gopal :(1900): "*Swatantra Poorva Hindi Ke Shangharsh ke Itihaas*". Prayag: Hindi Sahitya Sammelan. p.110
25. For details of the controversy in the vernacular press, see Ram Gopal: op;cit.

Dr. Himanshu K.Chaturvedi



Professor of Modern Indian History, Deen Dayal Upadhyay, Gorakhpur University, U.P. “Former Head, Department of History, DDU Gorakhpur University “Former Head, Department of Philosophy, DDU Gorakhpur University. “Member, Indian Council of Historical Research, New Delhi “Member..Board of Studies, Centre for Historical Studies, JNU “Member, Centre for Media Studie, JNU. “Member, Academic Council for ARPIT designing history refresher course, JNU “Adhyaksh, Itihas Sankalan Samiti, Gorakshprant



Professor R.P. Vyas - Smt. Phool Kanwar Vyas

Prof. R.P. Vyas Smriti Sansthan
Asop ki pole, Jodhpur

(Registered Under the Rajasthan Societies Registration Act No. 28, 1958)
Registration No. 210/Jodhpur/2017-18